THE TIMES OF INDIA

Date:09-11-22

What Justice?

Acquittals by higher courts of several death-row convicts speak very poorly of the legal, police system

TOI Editorials

The Supreme Court's acquittal of three death-row prisoners in the 2012 Chhawla gangrape-murder case – the court's reason being several procedural failings during the investigation and trial – speaks of a terrible state of affairs. This crime happened in Delhi just months before the Nirbhaya case that jolted India and led to reform of sexual assault laws. But the shoddy prosecution, carried out over 2013 and 2014, as well as the Delhi high court's failure to spot these lapses show that the Nirbhaya-inspired change of laws didn't engender enough systemic changes.

SC noted that 10 material witnesses of the 49 witnesses prosecution examined weren't even cross-examined by defence counsel, and many witnesses weren't adequately cross-examined. The court also said trial judges weren't expected to be "passive umpires" but are required to question witnesses to reach a correct conclusion. The accusedare often unable to secure competent legal assistance. A fair trial therefore requires a judge to adequately interrogate the prosecution version.

There were big lapses in the investigation too. A test identification parade of the accused wasn't conducted despite there being some eyewitnesses to the victim's kidnapping. The trial court and Delhi HC accepted the police version on the accused's arrest, confessions and recoveries – without corroborative evidence. Even the manner of discovering evidence, collecting samples and dispatching them for forensic analysis violated procedures, creating room for false implication. The trial court and HC awarded death penalties despite such infirmities.

Last December, Bombay HC acquitted a death-row prisoner, convicted of raping two and murdering one victim. In May, Bombay HC acquitted a man on death row for a double-murder case, noting fabrication of evidence. NLU Delhi's Project 39A reveals 33 prisoners on death row were acquitted nationwide in 2021. This is a huge number. Such cases often take at least a decade for final disposal. This is injustice to both the accused and victims and their families. The former lose years of their lives and for families of victims there's no closure. Re-investigation is difficult after evidence and witnesses were mishandled in the first place. Reliance on circumstantial evidence to secure convictions places huge responsibility on police and courts to ensure the whole chain of investigation withstands scrutiny and meets the "beyond reasonable

doubt" principle. This was a case where police, lawyers and judges failed in their discharge of duties. For citizens, this raises very troubling questions.

Date:09-11-22

Caste Away

Mushrooming quotas are a mess made by politics. Courts should stay away & let politicians sort it out

TOI Editorials

Whatever their core idea was 70 years ago, reservations today are not really about addressing deprivation. Their forceful expansion in recent decades has been fed by a boom in the politics of caste assertions. Where the courts could have defended the constitutional guardrails on the matter, their compounded actions have followed the political tide instead. This week has seen the apex court affirm both an EWS quota and an arguable breach of the 50% lakshman rekha, despite the high income ceiling of this quota and its high caste composition. Overall, the four opinions in the EWS verdict have introduced more doubts and complications.

Just last year a constitution bench had unanimously found a Maharashtra law benefiting Marathas and taking total quotas in the state beyond 50%, unconstitutional. But, as deputy CM Devendra Fadnavis has indicated, that reservation initiative will be pushing ahead with new confidence now. As will Chhattisgarh, Jharkhand, Karnataka and Jats, Gujjars, Vokkaligas … Even the call for reservation proportionate to population is gaining strength. The politics that has given oxygen to all this vehement jostling will find itself balancing conflicting interest groups endlessly. Whole new cans of worms are also being opened for reservations in local body elections in different states. Perhaps courts should simply get out of the way.

The persistent legislative efforts to press through new quotas are more about solidifying vocal caste vote banks than alleviating deprivation – whether historical, economic or overlapping. India will pay a cost for all the energy spent on this disingenuous welfare route rather than the means-tested programmes that uplifted China. Until politics, communities and courts remain more invested in expanding reservation rather than good education and jobs, capture of scarce opportunities by creamy layers will persist.

दैनिक भास्कर

Date:09-11-22

बदलती टेक्नोलॉजी में भारत कैसे पैर जमाए

संपादकीय

हर नई टेक्नोलॉजी उत्पादन लागत को सस्ता करती है। यही कारण है कि जो देश जितनी जल्दी इसे अपना लेता है वह उतना ही फायदे में रहता है। लेकिन जिस गति से टेक्नोलॉजी बदल रही है उसी गति से विकासशील देश योजनाएं नहीं बदल सकते। उदाहरण के लिए भारत में पेट्रोल/डीजल से चलने वाली गाड़ियों की जगह सीएनजी गाड़ियां ढाई दशक पहले बाजार में लाई गईं। तर्क था कि इससे प्रदूषण कम होगा और महंगे पेट्रोल/ डीजल का आयात खर्च बचेगा। गाड़ियों के इंजन उसके अनुरूप बनाए गए। इसी बीच एथेनॉल को पेट्रोल में मिलाने के लिए सरकार ने ऑटोमोबाइल उद्योग से इंजन बदलने को कहा। सरकार का दावा था कि कुछ वर्षों बाद सभी दोपहिया वाहन पेट्रोल की जगह केवल एथेनॉल इस्तेमाल करेंगे। इसके बाद देश भर में एथेनॉल उत्पादन के नए कारखाने लगने लगे, शुगर मिल एथेनॉल बनाने लगीं। बीते आठ वर्षों में एथेनॉल का उत्पादन 38 मिलियन लीटर से बढ़कर 450 मिलियन लीटर हो गया, जिसे सन् 2025 तक 1016 मिलियन लीटर करने की योजना है। पर इतना एथेनॉल सडक मार्ग से ब्लेंडिंग केंद्र तक पहुंचाना नई समस्या है क्योंकि उसके लिए 3.5 लाख अतिरिक्त टैंकर्स चाहिए और वे डीजल से चलेंगे जिससे 76 मिलियन टन ग्रीनहाउस गैस का उत्सर्जन होगा। अब इलेक्ट्रिक व्हीकल पर विचार होने लगा। लेकिन वैज्ञानिकों ने हाइड्रोजन से चलने वाली गाड़ियों को वाणिज्यिक रूप से सक्षम होने का ऐलान किया और अब भारत के योजनाकार यातायात के लिए इस बेहद सस्ती और प्रदूषण-शून्य टेक्नोलॉजी के लिए नीति बनाने में लग गए हैं। डीजल/पेट्रोल वाली कारें छोड़िए, एथेनॉल फैक्ट्रियों का क्या होगा, इलेक्ट्रिक वाहन कहां जाएंगे?

दैनिक जागरण

Date:09-11-22

न्याय का प्रश्न

संपादकीय

सामूहिक दुष्कर्म और हत्या के एक मामले में सुप्रीम कोर्ट ने हाई कोर्ट के फैसले को पलटते हुए अभियुक्तों को जिस तरह संदेह का लाभ देकर बरी कर दिया, उससे पीड़ित परिवार के साथ अन्य लोगों का विस्मित होना स्वाभाविक है। सुप्रीम कोर्ट का यह निर्णय इसलिए प्रश्न खड़े करने वाला है, क्योंकि निचली अदालत ने दिल्ली के छावला क्षेत्र के इस

चर्चित मामले को दुर्लभतम मानते हुए अभियुक्तों को मौत की सजा सुनाई थी। इस सजा पर दिल्ली उच्च न्यायालय ने भी अपनी मुहर लगाई थी। 2012 के इस मामले में अब सुप्रीम कोर्ट इस नतीजे पर पहुंचा कि निचली अदालतों की ओर से सुनाया गया फैसला सही नहीं था। उसने यह भी पाया कि इस मामले की जांच करते हुए पुलिस ने भी अपना काम सही तरह नहीं किया और अभियोजन पक्ष ने भी। हो सकता है कि सुप्रीम कोर्ट का निष्कर्ष सही हो, लेकिन क्या इसका यह अर्थ है कि 19 साल की उस किशोरी की हत्या किसी ने नहीं की और उसके साथ किसी ने सामूहिक दुष्कर्म नहीं किया? प्रश्न यह भी है कि यदि पुलिस और फिर अदालतों ने अपना काम सही तरह नहीं किया तो क्या इसके लिए उनकी कोई जवाबदेही तय होगी? यदि न्याय न हो पाने के लिए जिम्मेदार लोगों को जवाबदेह नहीं ठहराया जाता तो फिर इस तरह की विसंगतियों का सिलसिला तो कभी नहीं थमने वाला। किसी गफलत का उल्लेख करने मात्र से बात नहीं बनती। बात तब बनती है, जब उसका परिमार्जन किया जाए और उसके लिए उत्तरदायी लोगों के खिलाफ यथासंभव कार्रवाई की जाए, ताकि वे भविष्य में गलतियां करने से बचें।

यह कोई पहला मामला नहीं, जिसमें हाई कोर्ट के फैसले को सुप्रीम कोर्ट ने पलट दिया हो। जब किसी जघन्य मामले में ऐसा होता है तो इससे न्याय प्रक्रिया तो कठघरे में खड़ी दिखती ही है, यह सवाल भी उठता है कि पीड़ित को न्याय कैसे मिलेगा? इस मामले में तो यह सवाल भी उठेगा कि जिन्हें सामूहिक दुष्कर्म और हत्या का दोषी मानकर इतने समय जेल में रखा गया, उन्हें न्याय कैसे मिलेगा? न्याय केवल होना ही नहीं चाहिए, बल्कि वह होते हुए दिखना भी चाहिए। क्या यह उचित नहीं होता कि सुप्रीम कोर्ट इस मामले की नए सिरे से जांच करने के लिए आदेश देता? इस तरह के आदेश जेसिका लाल हत्याकांड में दिए गए थे। यदि उस मामले की जांच नए सिरे से हो सकती है तो फिर इस मामले की क्यों नहीं? यह वह प्रश्न है, जिसका उत्तर सामने आना ही चाहिए। इसी के साथ इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट को दिल्ली हाई कोर्ट के 2014 के निर्णय को सुनने में आठ वर्ष लग गए। इस देरी का भी कोई औचित्य नहीं।

जनसत्ता

Date:09-11-22

पर्यावरण की चिंता

संपादकीय

धरती के बिगड़ते पर्यावरण को लेकर संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंतोनियो गुतारेस ने जिस अंदाज में सभी देशों को चेताया है, उसका मतलब यही है कि अगर जल्द ही हमने पर्यावरण नहीं सुधारा तो आने वाले वक्त में अपने को बचा पाना मुश्किल हो जाएगा। मिस्र के शर्म अल-शेख में शुरू हुए अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन यानी कॉप 27 के मंच से गुतारेस ने साफ कहा कि मानव जाति को बचाने के लिए अब कोई बहुत वक्त नहीं बचा है। इसलिए हमें अब यह तय करना होगा कि धरती को बचाने के लिए या तो हम एकजुट होकर तेजी से काम करें या सामूहिक रूप से खुदकुशी का फैसला कर लें। हालांकि ऐसी चेतावनी कोई पहली बार नहीं आई है। हर साल होने वाले इस वैश्विक पर्यावरण सम्मेलन में विशेषज्ञ और प्रतिनिधि देशों के नेता यह चिंता जाहिर करते आए हैं। लेकिन विडंबना यह है कि अभी तक धरती को

बचाने के प्रयासों में वैसी तेजी दिखाई नहीं दी है, जैसी होनी चाहिए। इसके पीछे कारण कोई नए नहीं हैं। कहना न होगा कि धरती को बचाने की मुहिम अमीर और गरीब देशों के खेमे में बंट गई है और अमीर-गरीब की इस राजनीति में पर्यावरण बचाने की मुहिम कहीं पीछे छूटती नजर आ रही है।

इसीलिए यह सवाल भी लंबे समय से बना हुआ है कि पर्यावरण की रक्षा के लिए होने वाला खर्च कहां से आए? क्या सिर्फ विकासशील और गरीब देश ही पर्यावरण खराब कर रहे हैं? हकीकत तो यह है कि पिछली दो सदियों के दौरान पश्चिम में जिस तरह का भौतिकवादी विकास हुआ है, वह पर्यावरण की कीमत पर ही हुआ है। जबकि धरती के पर्यावरण को बिगाड़ने का ठीकरा गरीब और विकासशील देशों पर फोड़ा जाता रहा है। पर्यावरण को सुधारने के लिए अमीर देशों का गुट गरीब देशों पर ही दबाव बनाते रहे हैं। इसके लिए उन पर कठोर कदम उठाने का दबाव डाला जा रहा है। यह ऐसा जटिल मुद्दा है जो शर्म अल-शेख में पहले दो दिन में उठा है। छोटे से देश बारबाडोस के प्रधानमंत्री ने इस मंच से साफ कहा कि जो कंपनियां जीवाश्म ईंधन का इस्तेमाल कर पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रही हैं, उनसे पैसा वसूला जाए और उस पैसे को जलवायु संकट से निपटने के लिए गरीब देशों को दिया जाए। ऐसे मुद्दे को समर्थन देने वालों में भारत भी है।

हाल में आक्सफेम ने अपनी एक रिपोर्ट जारी कर सबको चौंका दिया है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि दुनिया के एक सौ पच्चीस सबसे अमीर लोग कार्बन उत्सर्जन के मामले में भी सबसे आगे हैं। इन लोगों के जो उद्योग हैं, वे कार्बन उत्सर्जन करते हैं, जबकि पर्यावरण को बचाने में इनकी कोई भागीदारी या जिम्मेदारी नहीं है। विडंबना तो यह है कि अमीर देशों का गुट लंबे समय से जीवाश्म ईंधन के इस्तेमाल को घटाने और इसे पूरी तरह से बंद करने पर जोर दे रहा है। ऐसा दबाव विकासशील और गरीबों देशों पर ज्यादा है। इसमें भी एशिया के देशों की संख्या कहीं ज्यादा है। लेकिन सच्चाई यह है कि अमेरिका और ब्रिटेन जैसे कई बड़े और अमीर देशों में अभी भी जीवाश्म ईंधन का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर हो रहा है। एशिया में चीन में अभी दशकों तक जीवाश्म ईंधन का प्रयोग बंद नहीं होने वाला। अब तक के पर्यावरण सम्मेलनों में अमीर देशों का क्या रुख रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। अगर धरती को बचाना है तो बड़ों को अपनी जिम्मेदारी पहले निभानी होगी।

राष्ट्रीय सहारा

Date:09-11-22

आरक्षण की गुंजलक

संपादकीय

अंततः सर्वोच्च न्यायालय ने दाखिलों और सरकारी नौकरियों में आर्थिक रूप से निर्धन वर्ग (ईडब्ल्यूएस) के लिए 10 फीसद आरक्षण का प्रावधान करने वाले 103वें संविधान संशोधन की वैधता को दो के मुकाबले तीन मतों के बहुमत से बरकरार रखा। न्यायमूर्ति दिनेश माहेश्वरी ने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा कि 103वें संशोधन को संविधान के मूल ढांचे

का उल्लंघन करने वाला नहीं कहा जा सकता। न्यायमूर्ति बेला त्रिवेदी,न्यायमूर्ति जे.बी. पारदीवाला ने न्यायमूर्ति माहेश्वरी से सहमति जताई। इन तीनों न्यायमूर्तियों ने 10 फीसद ईडब्ल्यूएस को बरकरार रखा। लेकिन प्रधान न्यायाधीश यू.यू. ललित और न्यायमूर्ति रवींद्र भट्ट ने अपनी असहमति जताई। असहमति का आधार यह है कि संशोधन के दायरे से एससी,एसटी और पिछड़े वर्ग के निर्धन वर्ग को बाहर रखने से उनके साथ अन्याय होगा। इसलिए यह संशोधन संविधान की मूल भावना के विरुद्ध है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के साथ जो सामाजिक भेद-भाव था,जिसे आरक्षण के द्वारा हटाने की कोशिश की गई, वह पूरी तरह उनकी गरीबी में अन्तर्निहित था। उन्हें आरक्षण देने का सीधा-सीधा अर्थ यह था कि इस वर्ग को आरक्षण के जरिये गरीबी से निकाला जाए। इसलिए जब उन्हें पहले से ही आरक्षण का लाभ मिल रहा है तो नये आरक्षण के तहत उन्हें आरक्षण के भीतर आरक्षण देने का तार्किक रूप से कोई अर्थ नहीं है। लेकिन हमें यह भी याद रखना चाहिए कि केंद्र सरकार का 103वें संविधान संशोधन करने का एक राजनीतिक आशय भी था। वर्तमान आरक्षण के विरुद्ध सवर्ण जातियों में आक्रोश पैदा हो रहा था और बार-बार इस तरह इंगित कर रही थी कि दलित,पिछड़े और अति पिछड़ी जातियों की तुलना में सवर्ण जातियों में भी निर्धनों और अति निर्धनों की विराट संख्या है जो स्वयं को सामाजिक 'अन्याय' का शिकार मानती हैं। केंद्र सरकार ने इस संशोधन के माध्यम से इस वर्ग को संतुष्ट करने का प्रयास किया है। एक तथ्य यह भी है कि आरक्षण संवेत तौर पर गरीबी के निराकरण में सहायक नहीं हुआ। बल्कि इसका लाभ विभिन्न आरक्षित जातियों के सबल समूहों को ही मिला। यह ऐसी स्थिति है जो आगे चलकर आरक्षण के कई तरह की मांगे उठा सकती है। वास्तव में होना यह चाहिए कि उस आरक्षणविहीन और समतापूर्ण समाज की अवधारणा को क्रियान्वित किया जाए जिसमें किसी को भी आरक्षण की जरूरत न पड़े।

Date:09-11-22

कोई विकल्प शेष नहीं

संपादकीय

मिस्र के शर्म अल शेख में चल रहे अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन (कॉप-27) में जलवायु परिवर्तन से उपजे भयावह खतरे को लेकर गंभीर मंत्रणा जारी है। हाल के वर्षों में पर्यावरण जिस तरह से दूषित हुआ है विश्व के सभी देशों पर इस बदलाव का दुष्प्रभाव दिख रहा है, उसके बाद अब किसी के लिए ज्यादा वक्त नहीं बचा है। खतरा इस कदर डरावना है कि संयुक्त राष्ट्र के महासचिव एंटोनियो गुटेरस कहते हैं कि सभी मुल्क पर्यावरण सुधार के लिए कार्य करें या फिर विनाश के लिए तैयार रहें। दरअसल, हाल के महीनों में पर्यावरण की विनाशक छवि से हर कोई हतप्रभ और भयातुर है। चाहे वह पाकिस्तान में आई सदी की भीषण बाढ़ हो, चेन्नई में बारिश का कहर हो, यूरोपीय देशों में भीषण

गर्मी और लू का प्रकोप हो आदि।

यह सब कुछ पर्यावरण के साथ मनुष्यों द्वारा किया गया अन्याय है। आश्चर्य की बात है कि सालों-साल बीतने के बावजूद इस दिशा में कहीं से उम्मीद या जिम्मेदारीपूर्ण काम का कोई चिह्न नहीं दिखता है। जलवायु परिवर्तन से दुनिया किस कदर संकट में आन पड़ी है, इसे बताने की जरूरत नहीं है। खासतौर पर अमीर देशों की गैरजवाबदेही ने मसले को और ज्यादा संगीन बना दिया है। पर्यावरण को सबसे ज्यादा नुकसान अमीर मुल्कों ने पहुंचाया। जब इस बावत बात उठी तो उन्होंने जवाबदेही उठाने की भी बात कही, मगर बाद में सिरे से मुकर गए। यह आचरण निंदनीय है। अमीर देश गरीब देशों की तुलना में कई-कई गुना ज्यादा कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ते हैं। दुनिया के दो सबसे ज्यादा प्रदूषण फैलाने वाले देश-अमेरिका और चीन-अपने दायित्वों से पीछा छुड़ाने में यकीन रखते हैं। शायद उन्हें नहीं मालूम कि प्रकृति अपने साथ हुए अन्याय का बदला समग्रता लेती है। इस मामले में वह अमीर और गरीब के बीच भेद नहीं करती है। पर्यावरण के जानकार सैकड़ों बार अपनी चिंता दोहरा चुके हैं कि तापमान में बढ़ोतरी की रफ्तार को कम नहीं किया गया तो कुछ भी नहीं बचेगा | ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन कम करने के लिए उन देशों को आगे होगा, जो इसका सबसे ज्यादा उत्सर्जन करते हैं। हमें 2050 तक शून्य उत्सर्जन का लक्ष्य हासिल करना होगा वहीं 2040 तक कोयला के इस्तेमाल से मुक्त होना होगा। कुल मिलाकर लक्ष्य बेहद कठिन हैं। देखना होगा, जीवन के बचने के कम विकल्प शेष रहने के आलोक में क्या कदम उठाए जाते हैं।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:09-11-22

चेतने का समय

संपादकीय

जिस वक्त मिस्र के शर्म अल-शेख में दुनिया भर के करीब 100 देशों के शासनाध्यक्ष जलवायु परिवर्तन पर माथापच्ची में जुटे हैं, ठीक उसी वक्त देहरादून स्थित 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ रिमोट सेंसिंग' (आईआईआरएस) के वैज्ञानिकों का खुलासा चिंतित करने वाला है। आईआईआरएस के वैज्ञानिकों ने जम्मू-कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल और उत्तराखंड के सैटेलाइट डाटा के विश्लेषण के आधार पर आगाह किया है कि देश के उत्तर-पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र के तापमान में बढ़ोतरी के कारण हिमालय पर बर्फ तेजी से पिघल रही है, जिससे अगले कुछ वर्षों में तो गंगा और यमुना जैसी इससे जुड़ी नदियों में भरपूर पानी रहेगा, लेकिन बाद के वर्षों में इनमें पानी घटना शुरू हो जाएगा, जो गंभीर जल संकट पैदा कर सकता है। वैज्ञनिकों का दावा है कि हिमालय में 'स्नो लाइन कवर' हर साल पांच से दस मीटर पीछे खिसक रहा है, यानी बर्फ की मात्रा में कमी आ रही है। इससे स्वाभाविक ही इसकी नदियों का जलस्तर प्रभावित होगा। देश, खासकर उत्तर भारत के जल-संसाधन में इन नदियों की क्या अहमियत है और ये कितनी विशाल आबादी की जीवनधारा हैं, यह बताने की जरूरत नहीं होनी चाहिए।

कुछ साल पहले तक तापमान में बढ़ोतरी की बहस को बौद्धिक विलास कहकर इसका उपहास उड़ाने वाली जमातें भी अब हालात की गंभीरता स्वीकारने लगी हैं। यही नहीं, अब आम आदमी भी इसका असर साफ-साफ महसूस कर रहा है। नवंबर का दूसरा सप्ताह चल रहा है और राष्ट्रीय राजधानी में लोग पंखे चलाकर सो रहे हैं। गौर कीजिए, यह क्षेत्र सर्वाधिक वायु प्रदूषण वाले इलाकों में शुमार है। ऐसे में, हिमालय पर कम बर्फ गिरने और उनके तेजी से पिघलने को लेकर जो बातें कही गई हैं, उन पर गौर किया जाना चाहिए। दुखद यह है कि ऐसी रिपोर्टें लगातार आ रही हैं, मगर इस दिशा में जिस तत्परता से कदम उठाए जाने चाहिए, वह नहीं हो पा रहा। इसके विपरीत संवेदनशील इलाकों की पारिस्थितिकी के साथ खिलवाड़ वाली गतिविधियां जारी हैं। इसी वर्ष अप्रैल में 'जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया' के नेतृत्व में विभिन्न संगठनों के विशेषज्ञों ने अपने अध्ययन में पाया था कि हिमालयी क्षेत्र के ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। यह ठीक है कि ग्लेशियरों का पिघलना कुदरती प्रक्रिया है, उसमें मनुष्य का जोर नहीं, पर क्या पहाड़ों की पारिस्थितिकी बिगाड़ने में भी इंसानों का कोई दखल नहीं है? बाढ़, चक्रवाती तूफान और बादलों के फटने जैसी कुदरती आपदाओं में लगातार बढ़ोतरी की वजह बिगड़ता पर्यावरण है, इसे कई वैज्ञानिक अध्ययनों ने पुष्ट किया है।

विडंबना यह है कि ग्लोबल वार्मिंग के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार देश इसकी कीमत चुका रहे गरीब देशों की पुकार सुनने को अब भी तैयार नहीं। मगर यह किसी एक क्षेत्र या देश का नहीं, पूरी मानवता का मसला है। कोविड-19 ने साफ कर दिया है कि कुदरती संकटों से अमीर मुल्क भी निरापद नहीं रहने वाले। इसलिए, आने वाली पीढ़ियों की खातिर यदि प्राकृतिक संसाधनों को अक्षुण्ण रखना है, तो उसके लिए देशों को आपसी सामंजस्य बनाना ही होगा। आईआईआरएस के वैज्ञानिकों के खुलासे के बाद हम जैसे विशाल आबादी वाले देशों को अपने जल संसाधन के संदर्भ में दीर्घकालिक रणनीति बनाने की जरूरत है। हमारे शहर तो अभी ही गरमियों में प्यास से तरसने लगते हैं, ऐसे में जब नदियों में पानी ही न होगा, तब क्या सूरत होगी?

Date:09-11-22

आखिर हमने क्यों शुरू किया आरक्षण

आनंद कुमार, (वरिष्ट समाजशास्त्री)

सोमवार को अपने आदेश में सर्वोच्च अदालत ने गरीब सवर्णों को आरक्षण देने संबंधी कार्यपालिका के आदेश की वैधानिकता तय कर दी। मगर इस फैसले के कई पहलू ऐसे हैं, जिन पर स्थिति अब भी स्पष्ट नहीं है। चिंता की बात यह भी है कि आरक्षण को लेकर समाज का दृष्टिकोण तेजी से बदल रहा है और समाज विज्ञानियों के अलावा शायद ही कोई अन्य आरक्षण व्यवस्था का तार्किक, दार्शनिक और नैतिक आधार जानता है।

हमारे मुल्क में जो सामाजिक व्यवस्था है, उसमें किसी भी अन्य देश की तरह कुछ ताकत के कारक हैं, तो कुछ दोष के। इन गड़बड़ियों को दूर करने की जिम्मेदारी आजादी के बाद की पीढ़ी की थी और इसके लिए संविधान नामक मार्गदर्शक दस्तावेज भी बनाया गया। इसमें उन वर्गों और समुदायों के लिए विशेष अवसर के प्रावधान किए गए, जिनको हम वंचित कहते हैं। अपने देश में भेदभाव के चार आधार रहे हैं- लिंग भेद, जाति भेद, गरीबी-अमीरी और धर्म या धार्मिक बहुसंख्यक। आरक्षण की व्यवस्था इसीलिए की गई कि जो लोग पीछे हैं या जिन लोगों के पांवों में हमने परंपराओं की

जंजीर बांध रखी थी, वह जंजीर राजनीतिक समानता पैदा करने से तो टूट गई, लेकिन आर्थिक व सामाजिक समानता के लिए उनमें नेतृत्व-निर्माण और क्षमता-विस्तार भी आवश्यक था। क्षमता-विस्तार के लिए शिक्षा के अधिकार की जरूरत थी, तो नेतृत्व-निर्माण के लिए आरक्षण की। आज यदि गरीबी का समाधान भी आरक्षण में खोजा जा रहा है, तो यह संविधान की प्रतिकूल व्याख्या ही कही जाएगी।

गरीबी दूर करने के लिए रोजगार के अधिकार की आवश्यकता है, आरक्षण की नहीं। फिर, आरक्षण की विडंबना है कि यह सिर्फ सरकारी क्षेत्र में लागू है और पिछले तीन दशकों से यह क्षेत्र सिमट रहा है एवं निजी क्षेत्र का विस्तार हो रहा है। यही कारण है कि आज आरक्षण के कारण हम नई पीढ़ी को ऐसा कागजी फूल दे रहे हैं, जो न रखने लायक है और न फेंकने लायक। जिनको आरक्षण मिला है, उनमें भी बेरोजगारी कमोबेश उतनी ही है, जितनी आरक्षण से वंचित तबके के बच्चों में। फिर भी, सवर्णों में आरक्षण को लेकर एक तनाव है, जबकि सच्चाई यह है कि देश में रोजगारहीन विकास का मॉडल खड़ा किया गया है, जिससे पार पाने का तरीका यही है कि हम आजीविका को बुनियादी अधिकार बनाएं। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की पिछली केंद्र सरकार ने ग्रामीण भारत के लिए रोजगार की व्यवस्था करके इसका उपाय निकालने का प्रयास किया था, जिसके बाद भारत की राजसत्ता कम से कम गांवों में बेरोजगारों के साथ खड़ी दिखती है। पिछले दिनों नगरों में भी रोजगार की गारंटी देने वाली योजना की शुरुआत राजस्थान की सरकार ने की है, जिसका असर देर-सबेर अन्य प्रदेशों पर भी पड़ेगा, क्योंकि रोजगारहीन नागरिकता निरर्थक होती है।

यही वजह है कि ईडब्ल्यूएस आरक्षण पर सर्वोच्च अदालत का ताजा फैसला विडंबनापूर्ण है। वैसे भी, आरक्षण की जो मर्यादा कुछ साल पहले नौ जजों की बेंच ने तय की थी, एक तरह से उस पर भी पांच जजों की पीठ ने निर्णय दिया है। यह समझना होगा कि 50 फीसदी आरक्षण की व्यवस्था इसलिए नहीं की गई थी कि इसकी एक सीमा होनी चाहिए। ऐसा दरअसल इसलिए किया गया था कि यदि कुछ सक्षम लोग अपनी ज्ञान-शक्ति के आधार पर देश चलाएंगे, तो कुछ लोगों को विशेष अवसर देकर क्षमता-निर्माण का अवसर दिया जाना चाहिए। इस मर्यादा से मंडल आयोग के समर्थक अब तक नाराज हैं। तमिलनाडु ने भी अपने यहां जो व्यवस्था दी है, उसे अदालत को काफी पहले सुलझा लेना चाहिए था। ऐसा न करने के कारण और तय सीमा से अधिक आरक्षण की व्यवस्था तमिलनाडु की प्रतिभाओं को सिलिकॉन वैली पहुंचा चुकी है। जाहिर है, आरक्षण एक समाज वैज्ञानिक उपकरण है, जिसका इस्तेमाल अब राजनीति के माहिर खिलाड़ी करने लगे हैं।

यहां मेरी मंशा न्यायमूर्तियों के विवेक पर सवाल उठाने की कतई नहीं है। वे सब गुणी हैं, पर यह सवाल भी गलत नहीं कि जिस मुद्दे पर नौ जजों की बेंच ने एक निर्देश जारी किया था, क्या उसे पांच जजों की पीठ ने महत्वहीन नहीं बना दिया? संविधान की आत्मा तो यही कहती है कि जो लोग सामाजिक व शैक्षणिक रूप से कमजोर हैं, उन्हीं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की जाए, और जो आर्थिक रूप से सक्षम नहीं हैं, उनके लिए नियोजन की। जब देश के करीब 80 करोड़ लोग इतने सक्षम नहीं कि वे अपने लिए दो वक्त का अनाज जुटा सकें और सरकार से खाद्यान्न मिलने की उम्मीद लगाए हुए हों, तब आर्थिक रूप से पिछड़े सवर्णों के इस आरक्षण का भला क्या मतलब है?

अपने देश में हर साल 1.5 करोड़ नौजवान श्रम बाजार में उतरते हैं, जबकि हमारी क्षमता महज 25-35 लाख रोजगार सालाना पैदा करने की है। स्पष्ट है, करीब सवा करोड़ के इस अंतर की भरपायी आरक्षण से नहीं हो सकती। इसके लिए हमें रोजगार आधारित नियोजन की जरूरत है। मगर वोट-बैंक के लिए जिस दलदल में देश को धंसाया जा चुका है, उससे पार पाने में शीर्ष अदालत का फैसला सक्षम नहीं है।

देश की प्रगति की प्रक्रिया में जो लोग पीछे छूट गए हैं, उनको साथ लेकर चलना राजसत्ता का हमेशा लक्ष्य होना चाहिए, तभी समावेशी विकास होगा। सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का कथन है, जबकि प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अनेकता में एकता की बात कही थी। यानी, इस मामले में नेहरू और मोदी समान धरातल पर हैं। इसीलिए सबसे पहले आरक्षण उसे मिलना चाहिए, जो दिव्यांग हैं, फिर जिस घर में कमाने वाले पुरुष का देहांत हो चुका हो, इसके बाद भौगोलिक रूप से मुश्किलों से जूझने वाले लोगों को और अंत में, जाति या संख्या बल से पीड़ित जरूरतमंदों को।

ईडब्ल्यूएस आरक्षण की व्यवस्था संविधान के तहत नहीं, वोट-बैंक के लिए की गई और अदालत ने इसे जारी रखकर एक तरह से निराश ही किया है। हम आशा करते हैं कि प्रधान न्यायाधीश पूर्ण सांविधानिक पीठ का गठन करके तमाम उलझनों को दूर करेंगे, जबकि शासन देश के जाने-माने समाज विज्ञानियों का आयोग बनाकर आरक्षण व्यवस्था की मर्यादा बचाने के उपाय तलाशेगा। आरक्षण नीति की समीक्षा मौजूदा वक्त की जरूरत है। टुकड़े-टुकड़े में इसके बारे में फैसला कतई देशहित में नहीं है।